बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 266

अपरिपक्व विचार

नीति आयोग इस बात पर विचार कर रहा है कि प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थों मसलन मांस, मछली, मुर्ग और अंडों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) के माध्यम से वितरित किया जाए। यह अपरिपक्व विचार है। दस में से चार बच्चे अल्प पोषण की समस्या से जूझ रहे हैं, ऐसे में प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थों को बढ़ावा देने की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता है। परंतु तेजी से खराब होने वाली इन वस्तुओं का पीडीएस के व्यापक नेटवर्क के जरिये वितरण करने का विचार समझदारी भरा नहीं लगता। इन उत्पादों को लगातार ठंडा रखना होगा और देश भर की 5 लाख राशन दुकानों में इसकी व्यवस्था सुनिश्चित नहीं की जा सकती। ये दुकानें उन क्षेत्रों में भी हैं जहां बिजली की आपूर्ति ही सही नहीं है। इन तमाम उचित मूल्य की दुकानों पर मांसाहारी भोजन रखने के लिए विशेष व्यवस्था करनी होगी जो फिलहाल वित्तीय रूप से एक बड़ा बोझ होगी और लॉजिस्टिक्स के स्तर पर भी यह प्रबंधनीय नहीं है। भोजन की गुणवत्ता के साथ किसी तरह का समझौता स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल सकता है। इससे इस कदम का उद्देश्य ही खारिज हो जाएगा। खाद्य सब्सिडी पहले ही 1.84 लाख करोड़ रुपये (2019-20 के बजट में) से अधिक है। इन महंगे खाद्य पदार्थों को गरीबों की पहुंच में लाने के लिए इसमें भी बहुत अधिक इजाफा करना होगा। दिक्कत यह भी है कि अगर सरकार जरूरी संसाधन जुटाने में सफल हो भी जाती है तो भी कुपोषण की समस्या शायद पूरी तरह दूर नहीं होगी क्योंकि आबादी का एक बड़ा हिस्सा शाकाहारी है जो शायद नि:शुल्क देने पर भी इन उत्पादों का सेवन न करे।

दूसरी ओर ऐसे किफायती और पोषक वैकल्पिक उत्पादों की भी कोई कमी नहीं है जिन्हें पीडीएस के माध्यम से आसानी से वितरित किया जा सकता है। दालें और मोटे अनाज इसमें शामिल हैं। देश में व्यापक तौर पर उगाए जाने वाले फलीदार अनाजों को अगर गरीबों की आर्थिक पहुंच में लाया जा सके तो देश में प्रोटीन की कमी की समस्या दूर हो सकती है। उनका उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है ताकि पीडीएस के जरिये उसका वितरण हो सके। मांसाहारी उत्पादों की तुलना में दालों के वितरण में बहुत मामूली सब्सिडी देनी होगी। मोटे अनाजों को अब पोषक अनाज कहा जाने लगा है और अपनी पोषण क्षमता की बदौलत ये भी पीडीएस में जगह के दावेदार हैं। इनमें बाजरा, ज्वार, रागी आदि शामिल हैं जो उन सूक्ष्म पोषक तत्त्वों से भरपूर हैं जो चावल और गेहूं में नहीं मिलते। चावल और गेहूं जैसे सब्सिडी वाले अनाज की उपलब्धता के पहले ये अन्न नियमित रूप से आम लोगों के भोजन का हिस्सा हुआ करते थे। कर्नाटक के एक स्कूल में जहां बच्चों को मोटा अनाज दिया जाता था, वहां हुए एक अध्ययन ने इन अनाजों के स्वास्थवर्धक गुणों को नए सिरे से सामने रखा है। हैदराबाद स्थित इंटरनैशनल क्रॉप्स रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर सेमी-एरिड ट्रॉपिक्स और एक स्वयंसेवी संगठन अक्षय पात्र द्वारा कराया गया यह अध्ययन बताता है कि मध्याह्न भोजन में चावल की जगह मोटे अनाज को शामिल किया जाए तो बच्चों की वृद्धि में 50 फीसदी तक का सुधार हो सकता है।

मोटे अनाज के स्वास्थ्यवर्धक होने के नाते दुनिया भर में उसकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है। भारत सरकार भी उनके इस गुण से वाकिफ है। बल्कि उसने 2018 को मोटे अनाज का वर्ष भी घोषित किया था। इन फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में भी इजाफा किया गया ताकि उत्पादन बढ़ सके। परंतु पीडीएस के जरिये वितरण और उसके पहले सरकारी खरीद जैसी विपणन सहायता की उसे अभी भी प्रतीक्षा है। यदि नीति आयोग दालों और मोटे अनाजों का उत्पादन बढ़ाने और इनकी सहायता से कुपोषण समाप्त करने का प्रयास करे तो बेहतर होगा बजाय कि पीडीएस के जरिये पशु उत्पादों के वितरण पर विचार करने के।

बिनय सिन्हा

अमेरिकी समाज में बढ़ती असमानता

अमेरिका में बढ़ती आर्थिक असमानता समाज के लिए बड़ी चुनौती बनती जा रही है। इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाल रहे हैं **पार्थसारथि शोम**

भारत और ब्राजील में बढ़ती असमानता के बारे में सभी जानते हैं। मैं काफी समय से इस बारे में लिखता भी रहा हूं। परंतु अमेरिका में बढ़ती असमानता शायद अधिक चौंकाने वाली बात है। द इकनॉमिस्ट पत्रिका का एक ताजा अंक इस चिंता को कम करके आंकने का प्रयास करता है। इसका शीर्षक है, 'असमानता के भ्रम: क्यों संपत्ति और आय का अंतर उतना नहीं है जितना वह नजर आता है।' इसने मुझे प्रतिक्रिया देने पर विवश किया है। इसमें हाल में आए विद्वतापूर्ण पर्चों के बारे में कहा गया कि उनके नतीजे पूर्व में उन पर्चों के परिणाम से विरोधाभासी हैं जिनमें कहा गया था कि अमेरिका में संपत्ति और आय के अंतर में तेजी से गिरावट आ रही है।

द इकनॉमिस्ट की कवरेज पर करीबी नजर डाली जाए तो पता चलता है कि नये पर्चों में पुराने पर्चों के नतीजों को उलटा नहीं गया है। बल्कि वे उन नतीजों की तीव्रता को कुछ हद तक कम करते हैं। ऐसे में यह निष्कर्ष अक्षुण्ण बना रहता है कि सन 1980 के दशक से अब तक असमानता में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। नये निष्कर्ष में नये आंकड़ों का अत्यंत चतुराईपूर्वक इस्तेमाल किया गया है। यही कारण है कि पिछले निष्कर्षों को नकारने में उनकी अक्षमता दरअसल शुरुआती नतीजों की मजबूती की पुष्टि ही करती है। व्यापक आकलन की शुरुआत इस बात से की जानी चाहिए कि बाजार कैसे काम करते हैं? सन 1776 में आई एडम स्मिथ की पुस्तक वेल्थ ऑफ नेशंस इसकी बुनियाद है। पुस्तक में कहा गया है कि वैयक्तिक लोग व्यक्तिगत लाभ से संचालित होते हैं। उनकी कारोबारी भावना बाजार में उपभोक्ताओं के लिए न्यूनतम मूल्य पर अधिकतम वस्तुएं उपलब्ध कराती है। ऐसे में स्वार्थपरकता समाज कल्याण को बढ़ावा देती है। इसके पीछे पूरी तरह एक ही सिद्धांत है और वह है कि आपूर्तिकर्ताओं के बीच प्रतिस्पर्धा।

बाद में अर्थशास्त्रियों ने इस मॉडल में उस समय परिवर्तन किया जब कुछ आपूर्तिकर्ता रह जाते हैं जो बाजार की कीमतों को नियंत्रित कर सकते हैं तब बाजार की कीमतें प्रतिस्पर्धी नहीं रह जाएंगी और उपभोक्ताओं को ऊंची कीमत चुकानी होगी। चाहे जो भी हो लेकिन अदृश्य हाथ का सिद्धांत विश्वसनीय माना गया और बाजार के कामकाज के पीछे उसे ही मुख्य प्रेरणा माना गया।

इसके अलावा उत्पादन प्रक्रिया और श्रम उत्पादकता में सुधार के साथ तथा तकनीक के उन्नत होने के साथ आर्थिक वृद्धि दर में स्थिर वृद्धि आएगी। उस राह पर तमाम संसाधनों के मालिक यह अनुभव करेंगे कि उनकी पूंजी या उनके श्रम पर प्रतिफल भी उसी दर से बढ़ेगा। यदि यह वृद्धि आबादी में वृद्धि की दर के समान हो गई तो उससे अर्थव्यवस्था की बढ़ोतरी के बुनियादी नियम से ही समझौता हो जाता है।

वह नियम संसाधन मालिकों के शुरुआती दान के बारे में कुछ नहीं कहता। इसे सन 1896 में इटली के अर्थशास्त्री विफ्रेडो पारेटो ने स्थापित किया। एक उभरते और विद्रोही प्रकृति के अर्थशास्त्री के रूप में मैंने अपनी स्नातकोत्तर की थीसिस का विषय रखा, 'नॉन एथिकल डिस्ट्रिब्यूशन ऐंड फेल्योर्स ऑफ मार्केट।' इसे एक बार में स्वीकार कर लिए जाने पर मुझे खासी प्रसन्नता हुई थी।

सारा आर्थिक सिद्धांत परिपूर्ण बाजार की सक्षमता पर आधारित था। इसी तरह कराधान सिद्धांत आगे बढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आखिर विभिन्न करों का बोझ अंतत: किस पर जाता है। इसके नतीजे स्पष्ट थे और उनका सामान्यीकरण किया जा सकता था। उन्हें टैक्स इंसीडेंस थ्योरम कहा गया। बाजार के समक्ष अनुनय मुझे हमेशा परेशान करती थी। मेरी पीएचडी थीसिस ने दर्शाया कि कैसे किसी बाजार अर्थव्यवस्था में परिणामों की स्वच्छता आसानी से ध्वस्त हो सकती है।

मैं यहां अपने उक्त प्रयासों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं क्योंकि मैंने कभी इस बात पर यकीन नहीं किया कि बाजार बिना किसी खामी के काम करते हैं। मैंने सन 1970 के दशक में जो निष्कर्ष और नतीजे दिए थे वे संक्षिप्त थे और अमेरिकी आर्थिक प्रतिष्ठान को यह यकीन नहीं दिला पाए कि बाजार में उसका भरोसा गलत था। शायद अपनी परिभाषा के दायरे में भी बाजार अर्थव्यवस्था ने सन 1970 तक व्यापक तौर पर स्वीकार्य प्रदर्शन किया, आर्थिक एजेंट्स को निवेश पर अच्छा प्रतिफल मिला और वेतन भत्तों में बढ़ोतरी हुई। लोगों के जीवन मानक में सुधार हुआ।

सन 1980 के दशक से बाजार प्रतिस्पर्धा के बुनियादी सिद्धांत में दरार आनी शुरू हो गई। नयी सहस्राब्दी में तो ऐसा और अधिक हुआ। सबसे पहले तो आर्थिक एजेंटों के बीच पूरी जानकारी विस्तारित थी और हर एजेंट को इतना छोटा रखा गया कि वह बाजार मूल्य को प्रभावित न कर सके। बाजार को अस्थिर करने की बात तो छोड़ ही दी जाए।

ये दोनों सिद्धांत धीरे-धीरे टूटने लगे। सूचना प्रौद्योगिकी की प्रचुरता के बीच सूचना जुटाना आसान हुआ। विश्लेषकों ने सुरक्षित वैश्विक आंकड़ों से सूचना जुटाना और वैश्विक जिंस कीमतों के अनुमान लगाना शुरू किया। जिन निवेशकों को जानकारी नहीं थी उन्होंने मामूली बढ़ोतरी पर अपने शेयर बेच दिए। जबकि सूचित निवेशकों ने कीमतें बढ़ने के बावजूद और अधिक खरीदारी की। इससे कीमतें और बाजार की बुनियाद अस्थिर हुई। जिनके पास सूचना थी उन्हें अपने निवेश की तुलना में कई गुना अधिक लाभ हासिल हुआ। वैश्विक बाजारों को अस्थिर करने और असंगत प्रतिफल हासिल करने के बाद वे वैश्विक परोपकारियों के रूप में सामने आए। यह नई सहस्त्राब्दी का विरोधाभास था। वित्तीय क्षेत्र समेत तमाम क्षेत्रों में ऐसा देखने को मिला।

वृहद स्तर पर देखें तो बार-बार सामने आए वैश्विक संकटों में बाजार के औंधे मुंह गिरने के बावजूद ऐसे एजेंट अधिकतम मूल्य हासिल करने में कामयाब रहे। जबकि इसी अवधि में शेयर बाजार से खरबों डॉलर की राशि स्वाहा हो गई। इससे लाभान्वित होने वाले एजेंट वैश्विक स्तर पर बहुत बड़े स्वरूप में उभरे। इसका असर छोटे प्रतिस्पर्धियों पर पड़ा। कुल मिलाकर इससे प्रतिस्पर्धी बाजार की छवि प्रभावित हुई। ऐसे में असमानता तो लाजिमी तौर पर आनी थी।

वृहद आर्थिक कारकों के अलावा नई सहस्राब्दी के वृहद आर्थिक संकेतक बताते हैं कि कैसे समूचे अमेरिका में आय में असमानता बढ़ रही है। यहां तक कि लिंग, नस्ल, आर्थिक गतिशीलता आदि सभी में असमानता बढ़ी है। हमने पत्रिका के जिस अंक से अपनी बात शुरू की, उसमें असमानता समाप्त करने को लेकर विचारों, विश्लेषण और नीतिगत कदमों में आमूलचूल बदलाव की बात निहित है। इसमें भारत के लिए भी अहम सबक हैं।

सरकार क्यों अपनाती हैं उथल-पुथल की राह?

सम सामयिक

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

मई 2014 और नवंबर 2016 के बीच मोदी सरकार पुराने ढर्रे पर चल रही थी और हर कोई यही शिकायत कर रहा था कि सरकार पर्याप्त तेजी से काम नहीं कर रही है। परंतु उसके बाद उसने जो तेजी अख्तियार की है वह कई बार बहुत अधिक उथल-पुथल करने वाली साबित हुई है।

बात चाहे नोटबंदी की हो या जीएसटी की या फिर तीन तलाक या अनुच्छेद 370 अथवा नागरिकता कानून में ताजा संशोधन की, सरकार ने चरणबद्ध तरीके से बदलाव करने के बजाय इन्हें अचानक और बड़े पैमाने पर लागू करने का प्रयास किया है। यहां तक कि जेएनयू की शुल्क वृद्धि भी इस लिहाज से बहुत ज्यादा थी कि उसे 10 रुपये प्रति माह से बढ़ाकर 2,400 रुपये प्रति माह किया गया।

इस व्यवहार को समझने के लिए शायद हमें वह समझना होगा जिसे जर्मन युगचेतना कहते हैं। इसके साथ ही उस कदम को भी देखना होगा जो सरकार को राजनीतिक लाभ पहुंचाने वाले उठाते हैं। इसे अच्छी तरह समझने के लिए हमें सन 1969 के दौर में जाना होगा। उस वर्ष जुलाई में इंदिरा गांधी ने कांग्रेस पार्टी में विभाजन किया और वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सहायता से एक अल्पमत सरकार चला रही थीं। उसे प्रसन्न करने के लिए उन्होंने देश के 14 सबसे बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इसके बाद उन्होंने प्रिवी पर्स की व्यवस्था समाप्त कर दी। यह वह व्यवस्था थी जिसके तहत गैर ब्रिटिश भारत के शासकों को मासिक तौर पर कुछ धनराशि दी जाती थी। यह राशि इसलिए दी जाती थी क्योंकि वे भारतीय गणराज्य में शामिल हुए थे। उन्होंने कहा था कि वह विशेष अधिकार समाप्त कर रही हैं। सन 1971 से 1973 के बीच उन्होंने कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया।

उनके कोयला मंत्री पी कुमार मंगलम थे जो पहले वामपंथी रह चुके थे। सन 1973 में उन्होंने अनाज के कारोबार का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया था। अच्छी बात यह थी कि यह कुछ ही महीने चला। सन 1974 से 1976 के बीच विदेशी तेल कंपनियों का भी निजीकरण कर दिया गया था। यह सब बहुत बड़ी उथलपुथल थी। इससे पहले देश ने ऐसा कुछ नहीं देखा था।

कारण

सरकार इतने बड़े पैमाने पर हंगामा क्यों खड़ा करती है इसे लेकर मेरे मन में दो व्याख्याएं हैं। इनमें से एक प्राथमिक है तो दूसरी नीतिगत। बाद वाली स्थिति के लिए सरकार को किसी ऐसे को प्रसन्न करना होता है जिसका समर्थन उसके अस्तित्व के लिए जरूरी हो। या फिर कोई ऐसा जो सत्ताधारी दल को वैचारिक संबल प्रदान कर सके।

परंतु इसे सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पहली स्थिति बन चुकी हो। यानी युग चेतना आ चुकी हो। एक अच्छा राजनेता समझ जाता है कि यह कब हो रहा है और वह इसका फायदा उठाता है। इंदिरा गांधी ने सन 1960 के दशक के आखिर तक विकसित हुई संपत्ति के पुनर्वितरण की ललक को पहचान लिया था और उन्होंने इसका पूरा लाभ लिया। उस नजरिये से देखें तो यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि व्यापक उथलपुथल की समस्या अकेले सरकार की खड़ी की हुई नहीं होती बल्कि इसके लिए देश का मिजाज भी वजह होता है जो बदलता है। ऐसे में वास्तविक प्रश्न यह होना चाहिए कि आखिर नया मिजाज क्यों आता है और राजनेता नया मिजाज बनाते हैं या वह मिजाज नेता बनाता है? उदाहरण के लिए सन 1960 के दशक के अंत तक न तो समाजवाद और न ही मौजूदा स्वरूप वाली धर्मनिरपेक्षता राजनीतिक मंचों पर नजर आती थी। इन बातों के बारे में कोई भी ज्यादा बात नहीं करता था। बल्कि इन विचारों को राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किए जाने को नापसंद किया जाता था और लोग इसे खारिज कर देते थे। जन संघ जैसे जिन दलों ने इस पर जोर दिया उनकी अनदेखी करनी उचित समझी गई। सन 1989 तक जन संघ का चुनावी प्रदर्शन इसका गवाह है। सवाल यह है कि बदला क्या? जैसा कि मैंने पहले भी कहा था सन 1960 के दशक में कांग्रेस पार्टी की वामपंथ पर निर्भरता एक महत्त्वपूर्ण कारक थी। इसके चलते पुनर्वितरण का इस हद तक इस्तेमाल हुआ कि देश कुछ ज्यादा ही समाजवादी बन गया। सन 1976 में इंदिरा गांधी ने समाजवादी शब्द को देश के संविधान में भी जोड़ दिया। धर्मनिरपेक्ष शब्द को भी उन्होंने ही इसका हिस्सा बनाया।

कारक

मुझे लगता है कि जिस तरह समाजवाद को लेकर मिजाज में बदलाव आया, वही स्थिति इन दिनों धर्मनिरपेक्षता के साथ बन चुकी है। इसके पीछे चाहे जो भी तात्कालिक या दीर्घकालिक कारण हों लेकिन सच यह है कि देश के लोग अब बहुत बड़ी तादाद में धर्मनिरपेक्षता से मुंह मोड़ चुके हैं। परंतु राजनीतिक लेनदेन की स्थिति हमेशा एकतरफा नहीं रहती। सन 1974 तक एक बड़े आर्थिक संकट और संसद और राज्य विधानसभाओं में भारी बहुमत के बल पर इंदिरा गांधी वामपंथ से दूरी बनाने में कामयाब रहीं क्योंकि उन्हें उनकी आवश्यकता नहीं थी। उसके बाद वह एक समाजवादी स्वरूप में ही सही लेकिन अर्थव्यवस्था को स्थिर रखने और मजबूत बनाने में कामयाब रहीं।

इसकी तुलना वर्तमान से करते हैं। मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल को बमुश्किल सात महीने हुए हैं और इसने हर वह काम किया है जो पार्टी और उसका वैचारिक साझेदार चाहता है- तीन तलाक, अनुच्छेद 370 का खात्मा और नया नागरिकता अधिनियम।

परंतु अब जबकि बड़े राजनीतिक काम हो चुके हैं, समय आ गया है कि वह अर्थव्यवस्था पर ध्यान दे जो असली समस्या बना हुआ है। संभाव्यता के सिद्धांत में इसे ऐसा बदलाव कहा जाता है जिसमें आप चर को इस प्रकार परिवर्तित कर सकते हैं कि चीजें आपके पक्ष में घटित हों। इंदिरा गांधी ने इसका सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया। अब मोदी भी ऐसा कर रहे हैं। हकीकत में उन्हें करना ही चाहिए। इंदिरा गांधी ने राष्ट्रीयकरण किया था, मोदी को इसे समाप्त करना चाहिए।

कानाफूसी

चॉकलेट वाले पुलिसकर्मी

देश भर में क्रिसमस, नए साल के आगमन के साथ-साथ अन्य त्योहारी मौसम की धूम है और त्योहारों का रंग गोवा की पुलिस पर भी चढ़ गया है। गोवा पुलिस ने यातायात नियमों का उल्लंघन करने वालों को दंडित करने के बजाय उन्हें चॉकलेट भेंट की। इतना ही नहीं पणजी में गश्त कर रहे पुलिसकर्मियों ने क्रिसमस के मौके को देखते हुए सांता क्लॉज की पोशाक भी पहनी। साथ ही यातायात नियमों का उल्लंघन करने वालों को यातायात सुरक्षा और संबंधित नियमों को लेकर लंबा-चौड़ा भाषण भी सुनना पड़ा। यातायात नियमों का उल्लंघन करने वाले कुछ लोगों को यह सब मजेदार लगा क्योंकि उन्हें जुर्माना नहीं देना पड़ा। वहीं अन्य लोग इस बात को लेकर संशय में थे कि यह कवायद जरूरी संदेश दे भी पाएगी या नहीं।

दारू नहीं सिर्फ दवा

दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने मंगलवार को शहर की झुग्गियों और झोपड़ियों में रहने वाले लोगों के लिए 'मुख्यमंत्री आवास योजना' की शुरुआत की। ध्यान रहे कि दिल्ली में फरवरी महीने में विधानसभा चुनाव होने हैं। इस अवसर पर केजरीवाल ने कहा कि पिछले पांच साल में उनकी सरकार ने आम लोगों को बुनियादी सुविधाएं दिलाने के लिए काम किया है। उन्होंने कहा, 'आपके स्कूल का इंतजाम कर दिया, आपके पानी का इंतजाम कर दिया, आपके दवा दारू का इंतजाम कर दिया।' इसके बाद थोड़ा रुकने के बाद उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा कि उनकी सरकार ने केवल 'दवा' का इंतजाम किया है 'दारू' का नहीं। इसके बाद हंसी के फव्वारों के बीच उन्होंने भीड़ में पीछे एक व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा कि 'देखो, वह आदमी खुश हो गया वहां।'

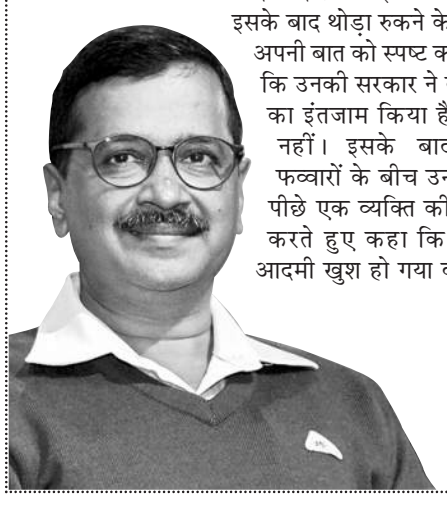

आपका पक्ष

गरीबों की योजनाओं पर अमीरों का ग्रहण

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार ने देश के हर गरीब की रसोई तक रसोई गैस पहुंचाने के लिए उज्ज्वला योजना शुरू की है। सरकार ने उन गरीब परिवारों तक मुफ्त रसोई गैस देने के लिए पहल की है जो 21वीं सदी में भी कोयले या लकड़ी जलाकर रसोई चलाते थे। हिमाचल प्रदेश सरकार ने इसी तर्ज पर मुख्यमंत्री गृहिणी योजना के तहत उन गरीब परिवारों तक रसोई गैस पहुंचाने के लिए प्रयास किए जो किन्हीं कारणों से उज्ज्वला योजना का लाभ नहीं ले पाए। लेकिन देश के कुछ समृद्ध लोग भी सरकार की मुफ्त की सुविधाओं को लेना चाहते हैं। इसका उदाहरण हिमाचल प्रदेश सरकार की मुख्यमंत्री गृहिणी योजना के लिए मुफ्त रसोई गैस कनेक्शन लेने वालों में कुछ फर्जी आवेदनों का आना है। अगर केंद्र और राज्य सरकार मुफ्त की दी जा रही सेवाओं की निष्पक्ष और उचित जांच करे तो बहुत चकित करने वाले आंकड़े सामने आएंगे। अक्सर देखा गया है कि केंद्र और राज्य सरकार जो योजनाएं गरीबों के लिए बनाती हैं वे भ्रष्टाचार के कारण दूर दूराज गांवों तक पहुंचने से पहले ही दम तोड़ देती हैं और जरूरतमंद लोग सरकार की योजनाओं से वंचित रह जाते हैं। सरकारों को इन योजनाओं को अमल में लाने के साथ ऐसी व्यवस्था का इंतजाम करना चाहिए कि कोई भी अपने चहेतों को सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं दे पाए और किसी अमीर व्यक्ति को गरीबों की योजनाओं का लाभ नहीं मिल सके।

गरीबों के लिए बनी सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन उचित तरीके से होना चाहिए

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

सहकारी बैंकों में कॉरपोरेट गवर्नेंस

सहकारी बैंकों में कॉरपोरेट गवर्नेंस लाने से इनकी हालत सुधारने में मदद मिल सकती है। इन बैंकों में ऑडिटर को और अधिक जवाबदेह बनाना होगा जिससे घोटालों को रोका जा सके। सहकारी बैंकों की मौजूदा खस्ताहालत को देखते हुए रिजर्व बैंक को अधिक शक्तियां देने का समय आ गया है जिससे सही निर्णय लिया जा सके। सहकारी बैंकों से ग्राहकों के उठ चुके भरोसे को बहाल करने के लिए भी कदम उठाने की आवश्यकता है। इसके लिए सहकारी बैंकों में घोटाला होने पर जमाकर्ताओं की राशि की सुरक्षा सुनिश्चित करने के नियम बनने चाहिए। जिसके तहत उनकी जमा राशि निकालने पर पाबंदी न लगाने का नियम हो।

नीतू वर्मा, झांसी

भिक्षावृत्ति पर रोक लगाने की जरूरत

देश में भिक्षावृत्ति सड़क किनारे, धार्मिक स्थल या चौक-चौराहों पर दिख जाती है। भारत में भीख मांगना और भीख देना पौराणिक कर्म है। इसे दान की श्रेणी में रखा जाता है। इस वजह से यहां भिक्षुकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। देश में एक वर्ग ऐसा है जिनके पास भोजन, कपड़ा और आवास नहीं हैं। यह वर्ग मजबूर होकर भिक्षावृत्ति अपना लेता है। लेकिन आज भिक्षावृत्ति ने एक व्यवसाय का रूप ले लिया है जो दया, सहानुभूति जैसी मानवीय भावनाओं का लाभ उठाते हैं। इस पर रोक लगाने के लिए वास्तविक स्थिति का पता सर्वेक्षण के जरिये लगाया जा सकता है। सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कानून बनाने की जरूरत है। इसके अलावा गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी के शिकार लोगों तक मौलिक सुविधाएं पहुंचाने की जरूरत है। भिक्षावृत्ति से जुड़े लोगों के लिए पुनर्वास योजना बनाने की जरूरत है।

अनु मिश्रा, सीवान

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।